International Journal of Information Movement Vol.3 Issue VIII (December 2018)
IFSIJ Impact Factor : 1.575 Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 6-10

वर्तमान वैश्विक समस्याएं एवं भारतीय संस्कृति में समाधान

प्रमिला देवी
सहायक प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
कन्या महाविद्यालय,
खरखौदा (सोनीपत)

संपूर्ण संसार में भारतीय संस्कृति को हमेशा से ही एक उच्च स्थान प्राप्त रहा है । अनेक देशों की संस्कृतियाँ समय–समय पर बनती व बिगड़ती रही, किंतु भारतीय संस्कृति हर परिस्थिति में अक्षुण्ण बनी रही। भारतीय संस्कृति को जानने से पूर्व हमें संस्कृति शब्द के अर्थ को जानना आवश्यक है । 'संस्कृति' शब्द दो शब्दों के योग से बना है – 'सम' एवं 'कृति', 'सम' उपसर्ग का अर्थ होता है – 'भला' या 'अच्छा' तथा 'कृति' का अर्थ होता है 'कार्य' । इस प्रकार 'संस्कृति' शब्द से हमारा अभिप्राय: अच्छे या भले कार्यो से होता है । वस्तुतः 'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ परिष्कार या शुद्धि होता है । संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की उपलब्धि नहीं होती व्यक्ति–समूह या विभिन्न समयों पर किए गए विभिन्न व्यक्तियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप संस्कृति की सृष्टि होती है । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मानवीय जीवन में विभिन्न क्षेत्रों में विकासपूर्ण उपलब्धियाँ ही 'संस्कृति' के नाम से जानी जाती है। डॉ0 नगेन्द्र का कथन है, "संस्कृत अवस्था का नाम ही संस्कृति है अर्थात् संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके प्रकृत राग द्वेषों में परिमार्जन होता है ।

सामाजिक जीवन की आंतरिक मूल प्रवृतियों का सम्मिलित रूप ही संस्कृति है।[1] उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी में 'संस्कृति' का पर्याय 'कल्चर' है । अतः कल्चर का अर्थ पैदा करना या सुधारना है । विभिन्न देशों के आचार विचार में भिन्नता के कारण सुधार संबंधी भावना भी अलग–अलग रहती है । यही कारण है कि विभिन्न देशों की संस्कृति के बीच अलगाव रहता है । यदि इसका विशद अध्ययन किया जाए तो यह निष्कर्ष सामने आएगा कि इस अलगाव के मध्य भी कुछ समानता अवश्य रहती है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य मानव संस्कृति हो सकती है।"[2]

वास्तव में धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान और रीति–रिवाज, संस्कार आदि के समन्वित रूप को संस्कृति कहते हैं । भारतीय संस्कृति इन स्थापित प्रतिमानों का आदर्श है । सर्वधर्म समभाव की कल्पना सर्वप्रथम भारत में ही उत्पन्न हुई । भारतीय संस्कृति में ही आज विश्व अपनी समस्याओं का समाधान खोज रहा है । यह सत्य भी है । आज संसार में सर्वत्र संघर्ष, निराशा, अविश्वास, अनास्था, भय और आतंक छाए हुए हैं । सर्वत्र घुटन, असंतोष, पीड़ा और संत्रास व्याप्त है । नैराश्य के इस सघन

International Journal of Information Movement Vol.3 Issue VIII (December 2018)
IFSIJ Impact Factor : 1.575 Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 6-10

अंधकार में भारतीय संस्कृति ही आशा, आस्था और ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण कर सकती है । इस प्रकाशवलय के अंतर्गत सभी के आने की और सभी के लाभान्वित होने की आज आवश्यकता है ।

इन मानवीय समस्याओं के साथ–साथ आज पर्यावरण प्रदूषण, जल संकट, पितृसत्ता, आतंकवाद, भौतिकवाद, भोगवाद, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, मूल्यहीनता जैसी समस्याओं से संपूर्ण विश्व जूझ रहा है । विश्व में भौतिक उन्नति के नित नए कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं । व्यक्ति जहाँ चन्द्रमा से बहुत ऊपर तक पहुँच गया है वही समुद्रतल की गहराइयों की सीमाओं को भी लांघ चुका है । विज्ञान और तकनीकी के बल पर मनुष्य ने अपरिमित उन्नति कर ली है । किंतु देखने में आ रहा है कि दुनिया भर में स्वार्थसिद्धि और भौतिक उन्नति करते–करते व्यक्ति अपने प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व नैतिक उत्तरदायित्व को भूलता जा रहा है । वह भूलता जा रहा है कि ईश्वर द्वारा बनाई इस प्रकृति के संसाधनों पर सृष्टि के अन्य प्राणियों का भी उतना ही अधिकार है जितना तुम्हारा । एक सुसंस्कृत समाज में रहने वाले संस्कार युक्त व्यक्ति के प्रत्येक क्रियाकलाप में विश्व कल्याण की भावना सदैव निहित रहती है।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज विश्व स्तर पर बनी हुई है । प्रकृति, जल, वायु को मनुष्य प्रतिदिन नुकसान पहुँचा रहा है । लेकिन भारतीय संस्कृति में प्रकृति के प्रति प्रेम को सदैव दर्शाया गया है । हमारी संस्कृति के कर्णधार ऐसे भगवान राम तथा कृष्ण, शिव, श्री अरविंद, रविन्द्रनाथ इत्यादि ने अपने जीवन के कितने ही वर्ष प्रकृति की गोद में बिताए थे । इन अर्थों में प्रकृति संस्कृति की सहचरी रही है । प्रकृति ने मनुष्य पर अनंत उपकार किए है । भारतीय परंपरा में धार्मिक कृत्यों में वृक्ष पूजा का भी महत्त्व मिलता है । पीपल को पूज्य मानकर उसे अटल सुहाग से संबद्ध किया गया है । भोजन में तुलसी का भोग पवित्र माना गया है, जो कई रोगों की रामबाण औषधि है । बिल्व वृक्ष को भगवान शंकर से जोड़ा गया और ढाक, पलाश, दूर्वा एवं कुश जैसी वनस्पतिों को नवग्रह पूजा आदि धार्मिक कृत्यों से जोड़ा गया । पूजा में कलश में सप्त नदियों का जल एवं सप्त भृत्तिका का पूजन करना व्यक्ति में नदी व भूमि को पवित्र बनाए रखने की भावना का संचार करता था । साथ ही यह भी दर्शाता है कि हमारा भारतीय समाज हजारों सालों से वन, नदी, वायु, सूर्य आदि की पूजा करता आया है और जिसकी पूजा की जाती है वह दोहन या शोषण के लिए नहीं होती । प्रकृति मनुष्य को स्वार्थ के दायरे से बाहर निकलकर जीना सिखाती है । मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध पंक्ति है :–

“जितने कष्ट कंटको में है
जिनका जीवन सुमन खिला,
गौरव–गंध उन्हें उतना ही
अत्र तत्र सर्वत्र मिला।”[3]

आज जल संकट भी एक बहुत बड़ी वैश्विक समस्या है । इसके बारे में भी भारतीय संस्कृति में विचार किया गया है । भारतीय संस्कृति में नदी, पर्वत, झरनों को लोगों की दिनचर्या से जोड़ा गया है जिसमें व्यक्ति अपने कल्याण के लिए देश की समस्त प्रसिद्ध नदियों और समुद्र का स्मरण करता है ।

''गंगा सिंधु सरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा
कावेरी सरयू महेंद्रतनया चर्मणवती वेदिका ।''

जल संकट को लेकर रहीम जी ने बहुत पहले ही कह दिया था ।

'रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून'

प्रकृति को तो भारतीय संस्कृति में परमात्मा की तरह पूजा गया है। गंगा, यमुना, हिमालय, अयोध्या, तुलसी, सूर्य, चंद्र इनका महत्त्व भगवान से किंचित भी कम नहीं माना गया है ।

आतंकवादः

आतंकवाद भी आज एक वैश्विक समस्या है । इसका समाधान भी भारतीय संस्कृति में निहित है । भारतीय संस्कृति आरम्भ से ही 'वसुधैव कुटुंबकम्' के महती आदर्श को लेकर चली है । भारत अपनी सांस्कृतिक अविच्छिन्नता एवं एकता के कारण ही प्राकृतिक राष्ट्र बना है, जिसके फलस्वरूप उसकी आंतरिक उर्जा एवं महाप्राणता असंदिग्ध है । हमारी संस्कृति में ग्रहण और त्याग का विवेक है । जिससे हमारे राष्ट्रीय मूल्य एवं मान समय–समय पर परिष्कृत होते रहते हैं । हम सदा सर्वदा से विराट के उपासक रहे हैं । जिसके कारण वैश्विक चेतना और विश्व संदृष्टि से भारतीय संस्कृति अनुप्राणित है । वह 'स्व' से 'पर' और सर्व की ओर बढ़ने वाली सुदीर्घ श्रृंखला है । वह ऐसा प्रवाह है जिसकी एक–एक बूँद में विद्यमान चुनौतियों के शिलाखंड को बहा ले जाने की क्षमता ने ही भारतीय राष्ट्रीयता को विश्वमैत्री, विश्वबंधुत्व और विश्वशांति तक विस्तीर्ण किया है । जहाँ हमारे समकालीन वैश्विक परिवेश में जब मनुष्य का धैर्य और सहिष्णुता जैसे भाव भौतिक जीवन की आपाधापी के दबाव के चलते तिरोहित हो रहे हैं तब मनुष्यता के उच्चतम आदर्श को लेकर संकल्पित हमारे मूल्य नूतन अर्थवत्ता पा रहे हैं । आज हम देखते हैं कि विश्व में दंगा–फसाद, लूटमार, हत्या, अपराध बढ़ते जा रहे हैं । ऐसी स्थिति में अपेक्षा रखी जातीहै कि ऐसे निंदनीय कृत्य न हों । यह हमारे अंतःकरण की सूक्ष्मातिसूक्ष्म आवाज है, जिसके मूल में संस्कृति है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'दीपावलीः सामाजिक मंगलेच्छा का प्रतिमापर्व' में हमारी संस्कृति में व्यक्त मंगल कामना को इन शब्दों में स्पष्ट किया है । ''आज से हजारों वर्ष पहले मनुष्य ने निश्चय किया था कि वह दरिद्रता की अवस्था में नहीं रहेगा, वह सामाजिक रूप में समृद्ध रहेगा, एक व्यक्ति नहीं, एक परिवार नहीं बल्कि समूचा मानव समूह समृद्धि चाहता है । अदारिद्रय चाहता है, अमंगल का अंत

चाहता है, उल्लास और उमंग चाहता है । दीपावली का उत्सव उसी सामाजिक मंगलेच्छा का दृश्यमान मूर्त्तरूप है।[4]

कर्मवादः

आज विश्व में सर्वत्र भोगवाद और वासना का प्रभाव है । भारतीय संस्कृति धर्म एवं अध्यात्म प्रधान संस्कृति है जिसमें 'कर्मवाद' पर विशेष बल दिया गया है । हमारी संस्कृति में 'अनासक्त' भाव से कर्म करने का विधान है । निष्काम कर्म की भावना को हम भारतीय संस्कृति की महान् देन कह सकते हैं । कर्मयोगी भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है ''कमण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'' अर्थात् कर्म करो फल की चिंता मत करो । संसार का कोई ऐसा देश नहीं है, जिसकी संस्कृति में इस प्रकार की कर्म–प्रेरणा मिलती हो । जैसी भारतीय संस्कृति में मिलती है। आज के युग में भौतिक सुख साधनों को जुटाने में मनुष्य लगा हुआ है । जबकि हमारे मनीषियों ने चिंतन के आधार पर आध्यात्मिक गुणों को ही सदैव प्राथमिकता प्रदान की है । इसलिए भौतिक दृष्टि से हमारी उपलब्धियाँ कम रही है । हमने लौकिक सुख को नहीं, पारलौकिक सुख को सदैव 'श्रेष्ठ' माना है । शारीरिक सुख की अपेक्षा आध्यात्मिक सुख के लिए हम बराबर प्रयत्नशील रहे हैं ।

मानव मूल्यों की स्थापनाः

आज विश्व में मानव मूल्यों का ह्रास हो रहा है । प्रेम, आदर और त्याग की भावनाएं मरती जा रही हैं । इनके स्थान पर द्वेष, क्लेश, स्वार्थ बढ़ता जा रहा है । ऐसी परिस्थिति में आज विश्व को भारतीय संस्कृति की सख्त जरूरत है जिससे प्रेरणा लेकर विश्व में मानवीय मूल्यों की पुनः स्थापना की जा सके । भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र हैं सत्यम् शिवम सुंदरम, वसुधैवकटुंबकम, मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, गुरु देवो भव, अतिथि देवो भव, अहिंसा परमोधर्म, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता, त्यागोन्मुखता, पुरुषार्थ आदि ।

आज का युग विज्ञान और तकनीकी का युग है । हमारी संस्कृति ज्ञान विज्ञान के रचनात्मक विकास में आस्था रखती है । 'जियो और जीने दो' वाली बात में भी हम आस्था रखते हैं । दूसरों की संपदा पर अधिकार जमाना या उसे छीनना हमारा धर्म नहीं है । हमारी दृष्टि रही है – ''पर द्रव्येषु लोष्ठवत्'' अर्थात् दूसरों के धन को मिट्टी के ढेले के समान मानना। हमारी सांस्कृतिक मान्यता रही है कि हम महापुरुषों को मान–सम्मान दें । उनके दिखाये मार्ग पर चलें । भारतवासियों को रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वासों की जिंदगी कभी प्रिय नहीं रही । ऐसे व्यक्ति प्रगतिशील नहीं होते । हमें तो प्रगति एवं प्रकाश की जिंदगी ही प्रिय रही है । वैदिक संस्कृति का मंत्र है – ''असतो मा सद्गमय, तमसोमाज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय।''

अतः हम कह सकते हैं कि विश्व की समस्याओं का समाधान भारतीय संस्कृति में ही समाहित है और हम पूर्णतः आश्वस्त भी है कि सदियों से प्रतिकूलताओं के आघातों को झेलकर सतत् परिष्कृत होती तथा और अधिक भव्य, नव्य और दिव्य स्वरूप धारण करती, अपने सशक्त सान्निध्य और पावन संस्पर्श से विश्व को संस्कृत कर देने की क्षमता से समन्वित भारतीय संस्कृति कभी विखंडित और क्षीण नहीं होगी अपितु प्रखर धारा स्वच्छ सलिला जाह्नवी की तरह अनेक संस्कृतियों के नदी–नदों को अपने में समाहित करती हुई अपने सहस्त्रों मुखों से मानवता के महासागर को निरंतर समृद्ध करती रहेगी।''

संदर्भः

1– डॉ0 नगेन्द्र, साकेत – एक अध्ययन, पृ0 71
2– हजारी प्रसाद द्विवेदी, ग्रंथावली–9, राजकमल प्रकाशन, पृ0 200
3– पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, छंद–20, पृ0 13
4– हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली–9, राजकमल प्रकाशन, पृ0 9